अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

पत्रांकःमेमो / अ0बौ0के0 / 04 / 2020 **दिनांक 18.04.2020**

कोरोना संकट में ***''स्वयं का बोध''*** ही वह सूत्र है जिससे न केवल जीवन एवं जगत के प्रति हमारे व्यवहार का विश्लेषण किया जा सकता है। बल्कि इसी के माध्यम से हम अपने मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रख सकते हैं और लॉकडाउन जन्य अकेले पन से अपना बचाव कर सकते हैं। भले ही हम घरों में अकेले हैं लेकिन ***''स्वयं का बोध''*** हमें ''अकेलेपन के दंश से सुरक्षित रखने में सहयोग कर सकता है क्योंकि यह वस्तुतः मानव स्वरुप का बोध है। मनुष्य के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि :–

- मनुष्य एक आत्म–चेतन सत्ता है। मनुष्य की चेतना न केवल बहिर्मुखी है बल्कि अन्तमुर्खी भी है।
- आत्मचेतन सत्ता होने के कारण ही मनुष्य को 'स्व' के बोध के साथ–साथ 'पर' का भी बोध होता है।
- जिसे हम 'पर' कहते है क्या वह 'स्व' से भिन्न है या 'स्व' का विस्तार है?
- उपर्युक्त बोध से ही यह सुनिश्चित होता है कि 'पर' के प्रति हमारा व्यवहार कैसा होगा।
- यदि 'पर', 'स्व' से भिन्न है तो निश्चित ही हम उसे अपने अधीन करना चाहेंगे–मानव व्यवहार के जितने भी निषेधात्मक पक्ष है उनका स्रोत यही बोध है जैसे हिंसा, घृणा, युद्ध, अत्याचार, शोषण, पर्यावरणीय संकट आदि।
- दूसरी तरफ यदि 'पर', 'स्व' का विस्तार है, उससे अभिन्न है तो हम 'पर' के साथ किसी भी तरह का दुर्व्यवहार नही कर सकते

'स्व' एवं 'पर' का सम्बन्ध ही हमारे मानव स्वभाव संबंधी विमर्श को प्रभावित करता है। इस बिन्दु पर भारतीय दार्शनिक दृष्टि एवं पाश्चात्य दार्शनिक दृष्टि में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती है। दोनों दृष्टियों में मानव स्वभाव की विवेचना के पूर्व यह आवश्यक है कि हम 'विचार' के स्वरूप के समझे एवं इसी सन्दर्भ में 'दर्शन' एवं 'फिलासफी' शब्द के अन्तर को भी जाने क्योंकि दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द न होकर वस्तुतः जीवन एवं जगत को समझने की दो दृष्टियाँ हैं। मानव स्वरूप की किसी भी विवेचना के पूर्व इन दृष्टियों को ठीक से समझना आवश्यक है।

फिलासफी एवं दर्शन दो जीवन दृष्टियाँ :

'पर' से हम जब तादात्म्य स्थापित करना चाहते है, उसे समझना चाहते है तो 'विचार', 'प्रत्यय' का ही सहारा लेते हैं। विचार, तथ्यों को अर्थ प्रदान करते हैं। इनमें भी रेखीय (linear) सम्बन्ध न हो द्वंद्वात्मक सम्बन्ध होता है। तथ्य, स्वयं में अर्थहीन होते है लेकिन हमारी इन्द्रियाँ केवल तथ्यों को ग्रहण करती है, संवेदनाओं को पकड़ सकती है। हम जब कुछ देखते है अनुभव करते है तो संवेदनाओं को ही जानते है। उदाहरण के लिए 'चाक' नामक वस्तु के प्रत्यक्ष में हमें उसकी संवेदनाएँ यथा सफेद रंग, बेलनाकार, स्पर्श में चिकना होना आदि ही प्राप्त होती है, उन्हें जब हम एक प्रत्यय–चाक के चतुर्दिक निबद्ध करते है तो उस अनुभव को एक अर्थ देते है। हमें 'चाक' नामक वस्तु का सीधे प्रत्यक्ष न हो, उस वस्तु की संवेदनाओं का प्रत्यक्ष होता है जिसे अर्थवान बनाने हेतु 'चाक' प्रत्यय की आवश्यकता होती है। 'चाक' की कोई स्वतंत्र सत्ता नही होती बल्कि इसकी सार्थकता, औचित्य इससे सम्बद्ध संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही होती है। दूसरे शब्दों में ***प्रत्यय या विचार स्वतंत्र अस्तित्व नही रखते बल्कि इनकी सार्थकता तत्सम्बन्धी यथार्थ के सन्दर्भ में ही होती है।***

तथ्य, विचारों हेतु, सामग्री देते है, विचार तथ्यों को अर्थ प्रदान करते है। इनमें एक जीवन्त द्वंद्वात्मक सम्बन्ध होता है। जिसे हम 'पश्चिमी दृष्टि' कहते है, उसे हम 'Philosophy' शब्द के विवेचन से समझ सकते है। फिलासफी वस्तुतः 'ज्ञान के प्रति अनुराग' है। ज्ञान प्रत्ययात्मक, अवधारणात्मक होता है जिसे 'तथ्यों' से ही स्पष्ट किया जा सकता है शायद इसी से पश्चिमी चिंतन की पूरी प्रक्रिया 'अन्दर से बाहर' जाने की है। पश्चिम की तथ्यों के प्रति, जगत के प्रति लगाव का यही कारण है। एक केन्द्र की अनन्त परिधियाँ हो सकती है और किसी भी एक परिधि को उसकी व्याख्या हेतु अनिवार्य नहीं माना जा सकता है; ठीक इसी तरह एक प्रत्यय या विचार की व्याख्या हेतु अनंत तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है लेकिन किसी एक तथ्य या समूह को उसकी व्याख्या के लिए अनिवार्य नही माना जा सकता। पश्चिमी चिंतकों के लिए जीवन एवं जगत की विवेचना इसीलिए अत्यंत विवाद का विषय रहा है। तथ्यों के प्रति इसी दृष्टि ने पश्चिम को विज्ञानोन्मुख बना दिया और विज्ञान का स्पष्ट उद्देश्य प्रकृति के रहस्यों को अनावृत्त करना था जिसमें उसे मानव के अधीन किया जा सके। विज्ञान, येन–केन–प्रकारेण प्रकृति पर विजय पाना चाहता है, मानो वह कोई शत्रु हो।

वहीं पर जिसे 'भारतीय या पूर्वो दृष्टि' कहा जाता है, को समझने में 'दर्शन' शब्द की सहायता ली जा सकती है। दर्शन का शाब्दिक अर्थ 'देखना' या व्यापक रूप से 'अनुभव' है लेकिन अनुभव (तथ्य) को हम तभी अनुभव कह सकते है जब उसे एक सूत्र–केन्द्र के सन्दर्भ में अर्थ देते हैं। पूरब का पूरा चिंतन 'बाहर से अन्दर' जाने के प्रक्रिया के रूप समझा जा सकता है। लेकिन यदि इस प्रक्रिया में 'अन्दर' को–विचार या प्रत्यय को अनुभव–तथ्य से स्वतंत्र मान लिया जाय तो वह (विचार या प्रत्यय) खोखला हो जाएंगा। पूरब की संस्कृति इसी से अपनी तमाम ऊचाईयों के बाद भी एक ऐसे आकाश को छूते हुए वृक्ष के समान प्रतीत होती है जिसकी जड़े पृथ्वी में बहुत गहरे तक नहीं गयी है और जिसकी थोड़ी सी भी तेज हवा में धराशायी हो जाने की पूर्ण सम्भावना होती है। हमने शुरूआत तो सही किया लेकिन 'अन्दर', 'विचारों या प्रत्ययों' के साफ–सुथरेपन से इतना अभिभूत हो गए कि उन्हें, उनके जीवन स्रोत–तथ्यों से काट दिया फलस्वरूप पूरब में जो संस्कृति विकसित हुई वह ऊपर से, किताब की दृष्टि से अत्यन्त उदात्त, चेतना की श्रेष्ठतम अभिव्यंजनाओं में से एक दिखाई देने लगी लेकिन व्यवहारिक स्तर पर इसमें कोई ऐश्वर्य न रह गया। हम पश्चिम को दीन–हीन, क्षुद्र पलायनवादी दिखें तथा पश्चिम हमें भोगवादी–इन्द्रियों को ही संतुष्ट करने वाले

व्यक्ति के रूप में दिखा जिसकी दृष्टि मात्र शरीर/संसार तक ही सीमित है। हमने अत्यंत सहजता से समस्त मानवीय कमियों, विसंगतियों का ठीकरा उनके सिर पर फोड़ दिया।

वास्तव में दोनों ही दृष्टियों एकांगी है। मनुष्य के सम्यक विवेचना हेतु आवश्यक है कि उनके द्वंद्वात्मक सम्बन्ध को रेखांकित किया जाय। जब एक जीवित हाड़–मांस का मनुष्य हमारे चिंतन का प्रस्थान बिन्दु होगा तो हम यह जान सकते है कि उसे तथ्यों का अनुभव होता है जिसे वह प्रत्यय के द्वारा अर्थ देता है। यह अर्थ उस अनुभव को नयी दृष्टि से–नये अनुभव के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है जिसे अर्थ देने हेतु पुनः हमें नवीन प्रत्यय की आवश्यकता होती है और यह क्रम निरंतर चलता रहता है जिसमें हम तथ्यों की दृष्टि से सम्पन्न होने के साथ–साथ वैचारिक दृष्टि से भी सम्पन्न होते जाते है। जितना हमारा बाह्य विस्तार होता है उसी अनुपात में हमारे अन्दर गहराई भी आती जाती है। इसी अवस्था में हम यह समझ लेते है कि हम जो कुछ भी देखते है, समझते हैं, करते है वह असंख्य परस्पर सम्बन्धित कारणों एवं परिस्थितियों की एक जटिल श्रृंखला के परिणाम है। यह समझ ***हमारे सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य को रूपांतरित कर देती है।*** हम सम्पूर्ण सृष्टि को ***एक जीवित प्राणी*** के रूप में देखने को विवश हो जाते हैं जहाँ प्रत्येक घटक/अंश दूसरे घटक/अंश के साथ संतुलित सहयोग करता है जिससे सभी ***''जीवित''*** रह सके। तब हम घटनाओं को स्याह एवं सफेद रूप में न देखकर जटिल श्रृंखलाबद्ध अन्तर्सम्बन्धों के रूप में देखते है और ***इस स्थिति में 'स्व' एवं 'पर' का तीव्र भेद निषेधित*** हो जाता है, वह हमें 'अति' प्रतीत होने लगता है। तथ्यों/अनुभवों की उपर्युक्त समझ हमें यह बोध कराती है कि 'स्व' एवं 'पर' में हम जो गहरा भेद करते रहे है, वह अधिकतर हमारे एक विशेष तरह से सोचनें में अभ्यस्त होने का परिणाम है। इसी से न केवल हमारी मूल्यपरक विवेचना प्रभावित होती है बल्कि यही हमारे व्यवहार को भी नियन्त्रित करती दिखाई देती है।

स्पष्टतः कोरोना संकट में यदि हम उपर्युक्त बोध को अनुभूत करने में सफल हो जाते हैं तो इस संकट से हम आसानी से छुटकारा पा सकते हैं और कोरोना वारियर्स – डाक्टर, स्वास्थ्य एवं पुलिस कर्मियों के साथ जो दुरव्यवहार हम कर रहे हैं उससे हम बचेंगे क्योंकि ***'वे'*** वस्तुतः ***'हमारे'*** लिए हैं, हमें संकट से सुरक्षित करने में सहयोग दे रहे हैं।

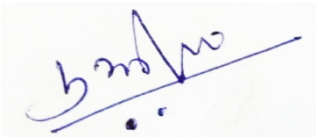

सुशील कुमार तिवारी
(विशेष कार्याधिकारी)
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर।